International Journal of Multidisciplinary Research and Development

International Journal of Multidisciplinary Research and Development

Volume: 2, Issue: 3, 925-927
March 2015
www.allsubjectjournal.com
e-ISSN: 2349-4182
p-ISSN: 2349-5979
Impact Factor: 4.342

राजेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, माँट,
मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।

Correspondence
राजेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, माँट,
मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।

मनववाद और अस्मिता–विमर्श का साहित्य

राजेश कुमार

सरांश
विश्व भर की मानव–सभ्यता और संस्कृति की समस्त उपलब्धियों का केन्द्र मनुष्य मात्र रहा है। लेकिन भारत के सन्दर्भ में स्थिति अपवाद रही है। यहाँ न्यूनतम मानवाधिकार पाने के लिए भी 'मनुष्य मात्र' होना पर्याप्त नहीं। भारतीय समाज में स्त्री, दलित और आदिवासी इसी 'अपर्याप्तता' के शिकार रहे हैं। यही कारण है कि उन्हें यहाँ के साहित्य में भी उचित स्थान नहीं मिल सका। दलित, स्त्री और आदिवासी साहित्य विमर्श सही अर्थों में मानववाद को हिन्दी साहित्य में स्थापित करने के लिए संघर्षरत हैं।

मूल शब्द : स्त्री, दलित, आदिवासी, अस्मिता, साहित्य, विमर्श, मानववाद।

प्रस्तावना
मनववाद साहित्य एवं कला का आधार स्तम्भ है। लेकिन हिन्दी साहित्य में 'मानववाद' के बहाने जिस 'मानवतावाद' को परंपरा से पोषित किया जाता रहा है, वह वास्तव में 'मानववाद ' का अव्यवस्थित रूप है। मानववाद की मूल भावना को समझे बिना एक अस्पष्ट अवधारणा के रूप में मानवतावाद का प्रयोग हिन्दी साहित्य का चलन सा बन गया है, जबकि इसमें मानववाद की संभावनाओं को अक्सर कम या खत्म करने का ही प्रयास होता रहा है। 'समाज–विज्ञान विश्वकोश ' में मानववाद (Humanism) की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है – ''ऐसी किसी भी विचार–प्रणाली को मानववाद कहा जा सकता है जो मानती हो कि मनुष्य हर चीज का मानक है। मानववाद मनुष्य की हैसियत, शक्ति, उपलब्धियों, संभावनाओं, रूचियों, सरोकारों और उसके प्राधिकार की संरचनाओं को अपना केंद्रीय सरोकार बनाता है।''[1]
मानववाद की उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार अगर किसी साहित्य के केन्द्र में मनुष्य नहीं है, तो वह मानववादी नहीं है। मनुष्य की केन्द्रीय स्थिति प्रायः हर साहित्य में मिल जाती है, मगर कालांतर में मानववाद की अवधारणा में जो परिवर्तन और विकास हुए, उनके पैमाने पर हिन्दी साहित्य का खरा उतरना अत्यंत कठिन है। 'समाज–विज्ञान विश्वकोश ' में 'मानववाद ' की अवधारणा और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा गया है –
''रिनेसाँ काल में यूनानी और लैटिन क्लासिकों का अध्ययन करने वाले कई विचारक खुद को मानववादी मानते थे, क्योंकि उनकी दिलचस्पी ईश्वर के बजाय इंसान में थी। नास्तिक न होने के बावजूद इन चिंतकों की निगाह में ईश्वर मानवीय जीवन के दैनंदिन रूपों का निकटतम नियंत्रक न होकर एक दूरस्थ सृष्टिकर्ता और पालक था। ईश्वर को खारिज करने के बजाय दूर हटा देने के इस आग्रह ने पृथ्वी और ब्रह्मांड संबंधी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास की गुंजाइश पैदा की। उन्नीसवीं सदी में डार्विनवाद की युग प्रवर्तक सफलता ने धर्म के ऊपर विज्ञान की सत्ता स्थापित कर दी। इसी के बाद से मानववाद को निरीश्वरवाद और अज्ञेयवाद की रोशनी में परिभाषित किया जाने लगा। इस प्रक्रिया में वैज्ञानिक मानववाद उभरा जिसने प्रकृति और मानवीय प्रारब्ध की सभी धार्मिक व्याख्याओं को खारिज करके विज्ञान सम्मत बौद्धिक निष्कर्षों का महत्व स्थापित किया। बीसवीं सदी तक आते–आते मानववादी सभी तरह के धार्मिक विश्वासों और धर्म संबंधी संस्थाओं की आलोचना करने लगे।''[2]
उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में मानववाद ने मनुष्य को केन्द्र में रखकर उसे हर गतिविधि का मानक माना। फिर निरेसाँकालीन मानववादियों ने ईश्वर को मानव जीवन–जगत से तटस्थ कर दिया। कालांतर में वैज्ञानिक मानववाद का विकास हुआ और मानववादी ईश्वर, धार्मिक अंधविश्वास आदि से मुक्त हुए। मानववाद का यह क्रमिक विकास ऐतिहासिक प्रक्रिया का हिस्सा है। ईश्वर और धर्म संबंधी अंधविश्वास से मुक्त होते–होते क्रमशः वैज्ञानिक दृष्टि से संपन्न होते जाने का लगभग यही अनुक्रम हिंदी साहित्य में भी मिलता है ; लेकिन हम लगभग एक सदी पीछे हैं। यूरोप में जो परिवर्तन बीसवीं सदी के आते–आते होने लग था, भारत में वह बीसवीं सदी के लगभग जाते–जाते हो सका, वह भी कई सीमाओं और कठिनाइयों के साथ। हिन्दी साहित्य में मानवीय पक्ष को महत्वपूर्ण मानते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं –

''मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता, पर मुखापेक्षिता से न बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न कर सके, जो उसे परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।''[3]

काव्य–प्रयोजन की दृष्टि से आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपर्युक्त कथन में वे तमाम बातें शामिल हैं जिनके अनुसार साहित्य को सर्वसमावेशी, सर्वहितकारी होना चाहिए ; संवेदनशील और 'पर दुःखकातर ' होना चाहिए। इसी प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भी साहित्य को मानववाद से जुड़ने का माध्यम माना है। अपनी पुस्तक 'मुख्यधारा और दलित साहित्य ' में वे लिखते हैं –

''साहित्य सिर्फ आनंद, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रयोजन से नहीं रचा जाता है। वहाँ मानवीय चिंताएँ, सरोकार, विकास यात्रा, संवेदनशीलता ही सर्वोपरि होने चाहिए। यदि साहित्य सामाजिक जीवन का हिस्सा नहीं बनता है, उसके सुख–दुःख, संघर्ष को रेखांकित नहीं करता है, तो वह सिर्फ बौद्धिक दुनिया का ही हिस्सा बनेगा, जमीनी सच्चाई से कई मीटर ऊपर जहाँ मानवीय संवेदनाओं का कोई अस्तित्व ही नहीं होता।''[4]

ओम प्रकाश बाल्मीकि ने संस्कृत काव्यशास्त्रियों के 'काव्य प्रयोजन ' में शामिल धर्मार्थ आदि को नकारते हुए उसमें मानवीय सरोकार, सुख–दुःख और संघर्ष को महत्व दिया। वे वर्तमान साहित्यिक परिप्रेक्ष्य की उस दुर्बलता की ओर भी संकेत कर रहे हैं जिसके कारण साहित्य बौद्धिक जुगाली मात्र रह गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और ओम प्रकाश वाल्मीकि का दृष्टिकोण वास्तविक मानववाद से ओत–प्रोत है। लेकिन साहित्य पर लागू होने वाले इन सारे आदर्शों से अधिकांश हिन्दी साहित्य प्रायः अछूता रहा है। हाँ, यह अवश्य है कि समकालीन वैश्विक वैचारिकी तथा स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिस्थितियों के फलस्वरूप उभरे अस्मितामूलक चिन्तन ने भारतीय जनमानस को इतना प्रभावित किया है कि यहाँ का समाज स्वयं को बदलने से नहीं रोक सका। यह अलग बात है कि वैश्विक स्तर पर होने वाले परिवर्तनों की अपेक्षा भारतीय स्तर पर परिवर्तन की गति बहुत धीमी है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्रांतिकारी विकास और तीव्र प्रसार ने जितनी तेजी से दुनिया को एक विश्वग्राम में बदला है, उतनी तेजी से विश्व में अब तक संभवतः कोई बड़ा सामाजिक परिवर्तन नहीं हुआ।

विश्व–सभ्यता के ज्ञात इतिहास में कोई काल और स्थान ऐसा नहीं जान पड़ता जिसमें स्त्रियाँ दोयम दर्जे का इंसान न मानी जाती हों। इसी तरह भारतीय हिन्दू सभ्यता के ज्ञात इतिहास में भी कोई काल और स्थान ऐसा नहीं जान पड़ता जिसमें शूद्र और अस्पृश्य न्यूनतम मानवीय अधिकारों तक से वंचित न हों। भारत में स्त्री, शूद्र और अस्पृश्य होने के नाते इन्हें जिस शोषण, अन्याय, अत्याचार, भेद–भाव का सामना करना पड़ा है, वह विश्व में विरलतम है। इसी शोषण–अत्याचार और भेद–भाव से मुक्ति तथा अपनी पहचान के साथ मानवीय गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार के लिए दुनिया भर में अस्मिता विमर्श का आंदोलन चल रहा है, जिसकी अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य में भी मिलती है। वास्तव में अस्मिता–विमर्शमूलक साहित्य ही हिन्दी में मानववाद का विशुद्ध रूप है, जिसमें कहीं भी धर्म या ईश्वर की घुसपैठ नहीं, जिसमें मनुष्य मात्र केन्द्र में है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और आदिवासी विमर्श इसके प्रमुख रूप हैं।

अस्मिता–विमर्शमूलक साहित्य रूपों में दलित साहित्य का विशेष महत्व है, जो हिन्दी साहित्य में मानववाद को स्थापित करने के लिए प्रयासरत है। दलित साहित्य के व्यापक मानववादी दृष्टिकोण की ओर संकेत करते हुए ओम प्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं–

''दलित लेखन केवल दलितों के अधिकार एवं मूल्यों तक सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक सन्दर्भों के साथ जुड़कर समूचे समाज की अस्मिता और मूल्यों की पहचान बनता है। दलित साहित्यकार अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ रचानाकर्म से जुड़कर साहित्य की सृजनात्मकता में मानवीय सरोकारों, संवेदनाओं और स्वतंत्रता, भाई–चारे की भावनाओं को स्थापित करता है। उसकी दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति और उसकी पीड़ा, उसके सुख–दुख महत्वपूर्ण हैं। उसमें दलित हो या स्त्री, उसके प्रति रागात्मक तादात्म्य स्थापित करना दलित साहित्य का प्रमुख प्रयोजन है। दलित चिन्तन ने नया आयाम देकर साहित्य की भावना का विस्तार किया है। पारम्परिक और स्थापित साहित्य को आत्मविश्लेषण और पुनर्विश्लेषण के लिए बाध्य किया है। झूठी और अतार्किक मान्यताओं का निर्ममता से विरोध किया है।''[5]

रूढ़ियों के प्रति दलित साहित्य की विद्रोही प्रवृति को देखकर कुछ लोग इस पर आरोप लगाते हैं कि यह वर्चस्व के लिए संघर्षरत लोगों का साहित्य है। सवर्णों का वर्चस्व समाप्त कर दलितों का वर्चस्व स्थापित हो जाएगा, तो भी स्थिति ज्यों–कि–त्यों रहेगी। लेकिन यह लोगों का भ्रम है। सवर्णों का वर्चस्व राजतंत्र काल में स्थापित हुआ था, लोकतंत्र में इसकी संभावना बिल्कुल नहीं है। एक और महत्वपूर्ण बात है– जाति आधारित भेद–भाव, शोषण, अन्याय, अत्याचार के विरूद्ध विद्रोह और समाज में समता, स्वतंत्रता, बंधुता की स्थापना के लिए रचे जा रहे दलित साहित्य के मूल प्रेरणास्रोत मानवमात्र के हितसाधक वही डॉ0 भीमराव अम्बेडकर हैं जिनके विषय में आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी ने यह महत्वपूर्ण टिप्पणी की है।

''इस देश का एक संविधान स्वतंत्र आर्यावर्त में मनु महाराज ने रचा था, और दूसरा देश के फिर से स्वाधीन होने पर डॉ0 अम्बेडकर ने रचा। मनु के विधान में अम्बेडकर के लिए स्थान नहीं था, या नहीं जैसा था, अम्बेडकर के विधान में मनु के लिए पूरा स्थान है।''[6]

वास्तव में दलित साहित्य डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के मानववाद का प्रचार–प्रसार का काम कर रहा है।

अस्मिता विमर्शमूलक साहित्य का एक महत्वपूर्ण रूप स्त्री विमर्श का भी साहित्य है, जो अपने स्वभाव में पुरुषवाद और सामंतवाद का विरोधी है, स्त्री–अधिकारों का पक्षधर है तथा भेद–भाव रहित विशुद्ध मानववादी समाज की स्थापना के लिए संघर्षरत है। स्त्री–विमर्श का संक्षिप्त और सटीक परिचय डॉ0 रोहिणी अग्रवाल के निम्नलिखित कथन से प्राप्त होता है।

''स्त्री–विमर्श अस्मिता आंदोलन है। यह हाशिए पर धकेल दी गई अस्मिताओं को पुनः केन्द्र में लाने और उनकी मानवीय गरिमा को पुनर्प्रतिष्ठित करने का महाभियान है। स्त्री–विमर्श अपनी मूल चेतना में स्त्री को पराधीन बनाने वाली पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था का विश्लेषण करता है। यह स्त्री को दोयम दर्जे का प्राणी मानने का विरोध करता है और स्त्री को एक जीवंत मानवीय इकाई समझने का संस्कार देता है। स्त्री–विमर्श पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पड़ताल करने के उपक्रम में विवाह संस्था, धर्म, न्याय और मीडिया की स्त्री–विरोधी भूमिका को प्रकाश में लाता है।''[7]

रूढ़िग्रस्त भारतीय समाज सिद्धांतों में तो स्त्री की खूब तरफदारी करता है, मगर व्यवहार में इसके ठीक उलट है। स्त्री–विमर्श भारतीय समाज के इस दिखावटी व्यवहार का सच उद्घाटित करता है और पुरुषवादियों के सहानुभूतिपरक व्यवहार को नकारता है। यह आंदोलन स्त्री को मानव होने का दर्जा दिये जाने के लिए संघर्षरत है। इस अर्थ में स्त्री–विमर्श मानववादी साहित्य का प्रतिनिधित्व करता है।

समकालीन भारतीय सांस्कृति आंदोलन में आदिवासी विमर्श का भी महत्वपूर्ण स्थान है, जो दलित विमर्श तथा स्त्री–विमर्श के समानान्तर आदिवासियों की अस्मिता, उनके मौलिक अधिकारों तथा मानवीय गरिमा के लिए संघर्षरत है। इस विमर्श की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है जल–जंगल–जमीन के संरक्षण के लिए इनकी जागरूकता। वर्तमान पर्यावरणीय संकटों तथा बिगड़ते पारिस्थितिकी तंत्र को संतुलित रखने के लिए प्राकृतिक संपदा की सुरक्षा अनिवार्य है। आदिवासी विमर्श की मानवीयता की ओर संकेत करते हुए हरिराम मीणा लिखते हैं।

''आदिवासी जन की असिमता के सवाल सम्पूर्ण मानवता के मौलिक सरोकारो से जुड़े हुए दिखाई देंगे। जहाँ से चलकर सभ्यता, संस्कृति व विज्ञान ने जितनी प्रगति की है उसके पश्चात् पारिस्थितिकीय वैश्विक संकट तक पहुँचने के बाद उस संकट का समाधान उन्हें ही खोजना होगा जहाँ से मनुष्य ने विकास की

अपनी यात्रा आरम्भ की है और यह समाधान मौलिक अधिकारों को ध्यान में रखकर ही संभव होगा।''[8]

आदिवासियों की जीवन–शैली में प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण अनिवार्यतः शामिल है, जो पूरे मानव समाज, पूरे वैश्विक समुदाय के जीवन की अनिवार्य शर्त है। यदि प्राकृति के प्रति उनके सान्निध्य से तथाकथित शिष्ट–सभ्य समाज कुछ सीख सके तो यह पूरी मानवता के लिए हितकर होगा।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि समकालीन अस्मिता विमर्शमूलक साहित्य सम्पूर्णता में मानववादी साहित्य है। ये विमर्श मानव समाज को उनके मूल सरोकारों से जोड़ते हैं, जिनके बिना मानवीय सभ्यता–संस्कृति निरर्थक होगी। ऐसे सार्थक साहित्यिक कर्म को ही सच्चे अर्थों में मानववादी कहा जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. समाज–विज्ञान विश्वकोश (भाग–1); संपादकः अभय कुमार दुबे; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2013, पृष्ठः 1431।
2. वहीः पृष्ठः 1431–1432।
3. हिन्दी साहित्य शास्त्र; संपादकः नंदकिशोर नवल; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करणः 2003; पृष्ठः 35।
4. ओम प्रकाश वाल्मीकि; मुख्यधारा और दलित साहित्य; सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली; दूसरा संस्करण–2010; पृष्ठः 30।
5. ओम प्रकाश वाल्मीकि; दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र'; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करणः 2001; पृष्ठः 25–26।
6. रामस्वरूप चतुर्वेदी; हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; तेईसवाँ संस्करणः 2012; पृष्ठः 17।
7. रोहिणी अग्रवाल; स्त्री लेखनः स्वप्न और संघर्ष; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; प्रथम संस्करणः 2011; पृष्ठः 12।
8. हरिराम मीणा; आदिवासी दुनिया; नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया; प्रथम संस्करणः 2013; पृष्ठः 170।